अंकुर सिंह

सिमटता गांव

जीवन के तीस बसंतों को पार कर चुका हूं, जब कभी एकांत में बैठ कर बीते हुए वर्षों का अवलोकन करता हूं तो लगता हैं कि समय ने दीवार पर टंगे कैलेंडर को ही नहीं बदला, अपितु रिश्ते–नाते, संबंधों की परिभाषा भी बदल दिया।

मेरा बचपन भारतीय संस्कृति के उस गांव में बीता हैं। जहां बचपन से हमें सिखाया जाता रहा कि अमुक इंसान (चाहे वो किसी जाति, धर्म से आते हो) रिश्ते में सब तुम्हारे भाई–बहन, चाचा–चाची और दादा–दादी लगेंगे। उस समय के संस्कृति ने कभी उम्र में बड़ों को उनके नाम से संबोधित करना नहीं सिखाया हमें, बल्कि रिश्तों के डोर में बंधे रहना सिखाया। मेरे हमउम्र के नवजवानों को याद होगा की उनकी शरारत या अनैतिक गतिविधियों पर कोई पड़ोसी देख लेता तो वह उन्हें येन केन प्रकारेण उन्हें वही रोक देता था। इसपर सोचता हूं तो लगता है कि उस समय लोगों की ये मानसिकता नहीं थी कि ये लड़का, फलां व्यक्ति के घर का है, मेरा क्या जायेगा इसके बिगड़ने पर? अपितु उन्हे ये लगता था ये मेरे गांव का भविष्य है आज कुम्हार भांति थोड़ा गढ़ दिया तो कल पूरे विश्व को शीतलता प्रदान करेगा।

आज जब उसी गांव में अपनी छुट्टियां बिताने जाता हूं, तो प्रौढ़ उम्र के कुछ व्यक्तियों को युवा अवस्था में प्रवेश कर रहे कुछ युवकों को उनके साथ अनैतिक गतिविधियों (नशा, चोरी, गलत शिक्षा) में लिप्त देखता हूं तो असहाय पीड़ा होती है, पर चाह कर भी वहां मौन रखना पड़ता है। इसका एक कारण ये भी है कि समय ने रिश्तों की परिभाषा बदल दिया। हमारे बचपन में हमारे गलतियों पर कोई भी परिचित हमें येन केन प्रकारेण (समझाते, डांटते और मारते थे) रोकते थे, और जब ये बात हमारे घर के अभिभावक को पता चलता तो वो भी हमें दंडित करते। आज के परिवेश का नवयुवक सुनना तो दूर हठ (बहस) कर जाते है, क्योंकि गांव का हर व्यक्ति उनका चाचा,भैया, दादा, लगेगा ये भावना अब बचपन से नहीं दी जाती शायद उन्हें। उनके अभिभावक को यदि जानकारी होती है की उनके बच्चों को डांटा गया तो इसे वो अपनी शान के खिलाफ (शायद अभिभावक भूल जाते है कि चेतना का विकास समाज में ही होता है, और चेतना परिवेश के अनुसार निर्मित होती है) समझ लेते है। यदि बात ज्यादा बढ़ गई तो अभिभावक इसे अपनी शान पर लेकर मामले को मानवाधिकार, प्रशासन इत्यादि में भी ले जाते है। शायद इसलिए कुछ लोग चाहते हुए अपने पास–पड़ोस के नवजवानों को उनकी गलतियों का अहसास नहीं करा पाते और ना चाहते हुए भी आंख बंद वहां से निकल लेते हैं।

मैने बचपन का वह दौर भी देखा है जब चौपाले लगती थी, जाड़े के दिनों में जलती अंगीठी के पास लोग इकट्ठा हो जाते थे, एक कप चाय पर बड़ी से बड़ी समस्या सुलझ जाती थी। आजकल तो अधिकांश लोग अधिकतर मामले को आपसी संवाद से न निपटा, शासन या न्यायालय का दरवाजा खटकना पसंद करते है। जबकि वो ये भूल

जाते है कि आपस के विवाद के चक्कर में अदालत में उनका समय बर्बाद होगा और उनके पास विकास हेतु सोचने करने का समय नहीं बचेगा। ये सच है कि ज्यादातर समस्या का समाधान आपसी सहमति /संवाद है (कई बार कोर्ट में सालों से लटके मामले भी राजीनामा से समाप्त होते है), इसी नजरिए से पूर्व प्रधानमंत्री अटल जी कश्मीर जैसे मुद्दे को बार–बार आपसी समझौता/संवाद से हल करने पर ज्यादा जोर देते थे। पूर्व राष्ट्रपति डॉ कलाम ने चित्रकूट के इलाकों में नानाजी देशमुख और उनके साथियों द्वारा ग्रामीण विकास प्रारूप हेतु बनाए संस्थान पर अपने एक बयान में कहा था कि "ये संस्थान विवाद रहित समाज के निमार्ण में मदद करता है, क्योंकि चित्रकूट के आस–पास के लगभग अस्सी गांव के लोगों ने उस समय सर्वसम्मति से निर्णय लिया था कि किसी विवाद के स्थिति में उसके समाधान के लिए वो अदालत नहीं जायेंगे बल्कि आपसी सहमति/संवाद से उसका समाधान करेंगे।"

विवाद यदि आपसी सहमति से निपटेगा तो रिश्ते अपनी मधुरता लिए आगे के लिए गतिमान रहेगा। यदि प्रशासन, न्यायालय से निपटेगा तो विवाद के निपटारे के साथ–साथ उन परिवारों के आपसी प्रेम सिमट जायेगा।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" धीरे धीरे इस वाक्य का अर्थ समाज से विलुप्त होता जा रहा हैं । माना भौतिकवादी युग में विकास के लिए देश–विदेश के अलग–अलग स्थानों पर जीविकापार्जन हेतु रहना पड़ता है। पर अपने मातृभूमि से जुड़े रहने के साथ साथ उन्हें अपने स्तर से अपने मातृभूमि के विकास के लिए अपने गांव पर ध्यान भी देना चाहिए, ये नहीं भूलना चाहिए कि कोरोना जैसे महामारी एवं अन्य हालत में मातृभूमि ने सभी को शरण दिया है।

महात्मा गांधी ने कहा था की "भारत की आत्मा गांवों में बसती है।" इसलिए मेरा मानना है सरकार को चाहिए कि छठवीं कक्षा के बाद ये नियम बना देना चाहिए कि साल के इतने दिन (सरकार द्वारा निर्धारित संख्या) गांव में रहने पर (इसकी मॉनिटरिंग ग्राम स्तर के प्रशासनिक अधिकारी करें और उनके स्तर से इसका प्रमाण पत्र जारी हो) ही अगली कक्षा में प्रवेश की अनुमति दी जाएगी। इस बहाने देश के नौनिहाल में बचपन से ही गांव के संस्कार अंकुरित होंगे और हम सब जानते है की बचपन के संस्कार जल्दी नहीं भूलते।

गांव की सीमा तो वही की वही रहेगी पर लोग आपस तक न सिमटे इसके लिए गांव स्तर के लोकगीत, त्योहार, परंपरा, रिवाज और भाषा के विकास हेतु सभी सरकारी एवम् गैर सरकारी संस्था सहित हमसब को साथ आना चाहिए, क्योंकि यहीं एक मध्यम है जो हमे एक धागे में पिरो कर रख सकता है। इसका एक सीधा उदाहरण देता है, गांव से 1500 किलोमीटर दूर यदि अपनी भाषा बोलते हुए कोई इंसान मिल जाता है तो हमें ऐसा प्रतीक होता है की रेगिस्तान में जलाशय मिल गया हो और फिर हम उससे इस कदर जुड़ने की कोशिश करते है जैसे हम वर्षों से जानते हो उसे।

हरदासीपुर, चंदवक, जौनपुर, उ. प्र. –222129., मोबाइल – 8367782654.